

संस्कृत कथाओं में सामाजिक मूल्य

Mrs. Rinky Gupta

Assistant Professor, Department of Sanskrit, Govt. Girls College, Karauli, Rajasthan, India

सार

साहित्य समाज का दर्पण है। समाज में जो भी घटित होता है वह साहित्य में प्रतिबिम्बित होता है। कवि की अनुभूति ही काव्य रूप में अभिव्यक्ति पाती है। यह अभिव्यक्ति किसी भी भाषा में हो सकती है। भाषा केवल माध्यम है। भाव ही मुख्य है, परन्तु यह प्रमाणित है कि संसार की समस्त कृतियों में ऋग्वेद प्रथम कृति है। इससे यह भी प्रमाणित हो जाता है कि संस्कृत भाषा प्राचीनतम भाषा है। अतः संसार का प्राचीनतम ज्ञान - विज्ञानकोष इसमें निहित है।

संस्कृत साहित्य भारतीय समाज के उत्कृष्ट जीवनमूल्यों, जीवन दर्शन, आध्यात्मिकता, सांस्कृतिक एवं सामाजिक परम्पराओं का प्रतिबिम्ब है। संस्कृत साहित्य भारतीय संस्कृति का संवाहक भी है। लगभग 3000 वर्ष पहले वैश्विक धरातल पर जब अपने विचार को अभिव्यक्ति प्रदान करने का प्रारंभिक प्रयास चल रहा था, उस समय भारतभूमि पर वाग्देवी अपने सम्पूर्ण एवं उत्कृष्ट रूप में ऋग्वेद के सूत्रों के रूप में अवतरित हो चुकी थी। तब से अनवरत संस्कृत साहित्य सरिता अवरल एवं सहज गति से प्रवाहमान है। धर्म, अर्थ, काम, एवं मोक्ष जैसे पुरुषार्थों की परिकल्पना कर उसे व्याख्यायित करने वाली, ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वाणप्रस्थ एवं संन्यास आश्रम के रूप में जीवन को एवं ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र के रूप में समाज को व्यवस्था एवं संतुलन प्रदान करने वाली, सोलह संस्कारों, तीन ऋणों, पंच महायज्ञों एवं गुरुकुल शिक्षा से जीवन को परिमार्जित करने वाली तथा अपने आध्यात्मिक जीवन दर्शन से आत्मकल्याण का मार्ग प्रशस्त करने वाली भारतीय संस्कृति का सम्पूर्ण दर्शन है संस्कृत साहित्य। संस्कृत साहित्य में जीवन के श्रेय एवं प्रेय दोनों पक्षों का सामंजस्य है। भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता के उत्तरोत्तर विकास की सम्पूर्ण झांकी है संस्कृत साहित्य। संस्कृत साहित्य में मनुष्य के कर्तव्यों की विशद व्याख्या की गई है। गीता जैसी अमृत वाणी संस्कृत में ही है। 'वसुधैव कुटुम्बकम्' का नारा संस्कृत साहित्य का ही अवदान है। इस प्रकार संस्कृत साहित्य में मनुष्य की ही नहीं पशु - पक्षी एवं पेड़ - पौधों को संरक्षण की भी चिंता की गई है। जीव हत्या नहीं करना है। किसी का अहित करना तो दूर की बात सोचने तक की मनाही है। अतः संवेदनशील समाज के निर्माण में संस्कृत साहित्य की महत्वपूर्ण भूमिका है।

परिचय

संस्कृत भाषा में निबद्ध साहित्यमें एकता के सूत्र प्राप्त होते हैं। यह सूत्र सामाजिक एकता एवं समरसता का मूलाधार है। देश में अनेक भाषाएँ बोली जाती हैं। इन भाषाओं की जननी संस्कृत ही है।

संस्कृत ही सभी भाषाओं को बांधकर रखी है। यह समाज को जोड़ने वाली भाषा है। सूत्र ग्रंथों और स्मृतियों ने समाजवाद की अवधारणा को जन्म दिया। सामाजिक व्यवस्थाओं के सफल संचालन हेतु अनेक संस्थाओं का विशद वर्णन संस्कृत साहित्य में उपलब्ध है। विवाह, परिवार आदि संस्थाएँ उनके उत्तरदायित्व एवं मर्यादाओं की स्थापना संस्कृत साहित्य में जिस तरह से उल्लिखित हैं वह अत्यन्त दुर्लभ हैं। आज पूरा विश्व संस्कृत साहित्य के उदात्त संदेशों को ग्रहण कर रहा है।

अनेक साहित्यिक रचनाएँ भी समय - समय पर लिखी गईं जिससे तत्कालीन सामाजिक गतिविधियाँ उद्घाटित होती हैं। संस्कृत के महान कवि कालिदास के कुमार संभव, शाकुंतलम्, मालविकाग्नि मित्र जैसे ग्रंथों से गुप्त कालीन समाज और धर्म का ज्ञान प्राप्त होता है। भास, हर्ष, शूद्रक आदि संस्कृत के अनेक ऐसे लेखक व साहित्यकार हुए हैं जिनके ग्रंथों व साहित्यों में तत्कालीन समाज का चित्रण हुआ है। हर्ष की 'रत्नावली', 'नागानन्द' और प्रियदर्शिका उल्लेखनीय हैं। शूद्रकृत मृच्छकटिका तदयुगीन समाज का विस्तृत चित्रण सम्मुख रखता है। विशात्वदत्तकृत 'मुद्राराक्षस' और देवी चन्द्रगुप्तम् ऐसी साहित्यिक रचनाएँ हैं, जो इतिहास को भी स्पर्श करती हैं। इनके अतिरिक्त अनेक कथा - ग्रन्थ भी लिखे गए जिनसे सामाजिक और धार्मिक दशा का चित्रण होता है। गुणाद्य कृत 'बृहत् कथा' का उल्लेख अनेक लेखकों ने किया है, किन्तु यह ग्रंथ अनुपलब्ध है। बुद्ध स्वामी की 'वृहत् कथा' क्षेमेन्द्र की 'वृहत्कथामंजरी' और सोमदेव की कथासरित सागर नामक कृतियाँ भारत के उत्तर प्राचीन समाज और संस्कृति को विवृत करती हैं। दक्षिण के तमिल साहित्य से दक्षिण का सामाजिक इतिहास व्यक्त होता है। मणिमेखलै, शिलप्पदिकारम्, तिरक्कुरलम्, नन्दिमकालम्बकम् आदि ऐसे ही प्रसिद्ध ग्रंथ हैं। जीवनचिन्तामणि में कवि तिरुत्तकदेवर ने राजनीतिक घटनाओं के साथ - साथ सामाजिक और धार्मिक जीवन को भीचित्रित किया है। [1]

स्मृतिकारों ने सूत्र साहित्य में वर्णित विषयों का विस्तार पूर्वक समयानुक्त श्लोकबद्ध विवेचन किया है। व्यक्तिगत तथा सामूहिक आचार व्यवहार का वर्णन गृह सूत्रों एवं धर्मसूत्रों में किया गया है। संस्कृत साहित्य में जिन सामाजिक आदर्शों, नियमों का निदर्शन प्राप्त होता है, वे ऋषियों द्वारा शताब्दियों के चिंतन मनन तथा अध्ययन का परिणाम है। चतुर्विध पुरुषार्थ की अवधारणा संस्कृत साहित्य से ही प्राप्त होती है। वर्ण व्यवस्था, आश्रम व्यवस्था की परिकल्पना एवं विस्तार संस्कृत साहित्य की ही देन है। मानव समाज को परिष्कृत एवं सुसंस्कृत बनाने हेतु गर्भकाल से लेकर मृत्यु पर्याप्त सोलह प्रकार के संस्कारों का वर्णन संस्कृत साहित्यों

में विस्तार से किया गया है। जिसका पालन कर लोग आदर्श समाज की स्थापना कर सकते हैं।[1]

संस्कृत साहित्य में व्यक्त है कि परोपकार मानवीय गुण समाज के लिए शांति एवं सुख देता है। परोपकार में त्याग की भावना विद्यमान रहती है। इस गुण के कारण मुन्य अपना संचित धन, अपना समय, दूसरों की सेवा - सुश्रुषा तथा सहायता में लगाता है। उपकृत व्यक्ति उपकारी का ऋणी हो जाता है। परोपकार से न केवल व्यक्ति का भला होता है, अपितु निरर्थक प्रतिद्वन्द्विता, ईष्या - मात्सर्य से छुटकारा मिलता है तथा पारस्परिक सौहार्द बढ़ता है। परस्पर स्नेही लोग जीवन की सरसता का अनुभव करते हैं। [2]

संस्कृत साहित्य में त्याग की अनेक गाथाएँ विद्यमान हैं। भगवान श्रीराम ने पिता द्वारा प्रदत्त राज्य को त्याग कर वनवास ले लिया था। अशांति एवं पारस्परिक कलह को दूर करने का सबसे अच्छा माध्यम त्याग है। त्याग से स्वार्थपरता में कमी आती है। आत्मा में संतोष बढ़ता है। पारस्परिक स्नेह बढ़ता है। दूसरे का क्रोध भी शांत होता है। त्याग - भावना से समाज में दुःखकारक अन्याय - अत्याचार कर नहीं सकते। संस्कृत साहित्य में त्याग को एक मानव - मूल्य के रूप में स्वीकार किया गया है।

संस्कृत साहित्य में अहिंसा को बड़ी गहराई से अंकित किया गया है। सामान्यतया किसी को न मारना अहिंसा है। परंतु, हम जानते हैं कि किसी भी प्राणी को मन से, वाणी से तथा कर्म से किसी प्रकार की चोट न पहुँचाना अहिंसा है। यदि अहिंसा धर्म का पालन मानव - समाज द्वारा किया जाए, तो संसार में व्याप्त मार - काट आदि विसंगतियों से छुटकारा पाया जा सकता है।

संस्कृत साहित्य आचरणात्मक एवं आदर्शपूर्ण मानव मूल्यों के लिये एक अनुपम वैश्विक धरोहर है, जो शताब्दियों से अजश्र धारावत प्लावित सामाजिक जीवन में अपनी असीम गरिमा और अनन्त प्रासंगिकताको सिद्ध करते आ रहे हैं। भारतीय धरातल पर प्रणीत वेद वाङ्मय ही धरती पर मानव मूल्यों की सुदृढ़ आधारभिला रख चुका है, जिसके आधार पर हमारी भव्य संस्कृति की अट्टालिका अपनी पूर्ण गरिमा के साथ खड़ी है। [3] मानव को कदाचित्त जब अपनी अस्मिता का बोध हुआ होगा, तब ही से उसने मूल्यों की परिकल्पना और उनका आचरण आरंभ कर दिया होगा। चारों वेद और एक सौ आठ उपनिषद मानव को अपने गंतव्य की ओर इस तत्परता के साथ अग्रसर होने की प्रेरणा देते हैं कि उससे कहीं भी कोई त्रुटि न हो जाय। कहना न होगा कि मानव के लिये आचरणात्मक और अनाचरणीय जैसे सभी तत्त्वों का वेद वाङ्मय ने विस्तार से वर्णन किया है, जिन्हें हम आज मूल्यों की संज्ञा से अभिहित कर रहे हैं। [4]

भारतवर्ष में सांसारिक जीवन के उपकरणों को सौलभ्य होने के कारण भारतीय समाज जीवन संग्राम के विकट संघर्ष से अपने को अलग रखकर आनन्द की अनुभूति की उपलब्धि को अपना लक्ष्य मानता है। इसीलिए संस्कृत साहित्य जीवन की विशम परिस्थितियों के भीतर से आनन्द की खोज में सदा संलग्न रहता है। संस्कृत साहित्य भारत देश का नहीं, अपितु सम्पूर्ण विश्व के जनमानस कल्याण के लिए संकल्पित है। संस्कृत साहित्य के अनुसार समस्त

प्राणियों में एक ही आत्मा के विराजमान होने के कारण सब में समानता मानी गयी है। एतदर्थ मानवमात्र को परस्पर भाई - बन्धु के समान रहने की शिक्षा दी गयी है, साथ ही इस शिक्षा को जीवन में प्रायोगिक एवं जीवन रूप देने के लिए अहिंसा, करुणा, प्रेम, समता, सहानुभूति, सहिष्णुता, सहृदय, सहयोग, समन्वय आदि सत्कृत्व्यों के पालन करने पर जोर दिया गया है। [5]

“हितेन सह इति सहितस्य भावः साहित्यम्।”

यह वाक्य संस्कृत का एक प्रसिद्ध सूत्र वाक्य है जिसका अर्थ होता है साहित्य का मूल तत्त्व सबका हित साधन है। मानव अपने मन में उठने वाले भावों को जब लेखनीबद्ध कर भाषा के माध्यम से प्रकट करने लगता है तो वह रचनात्मक ज्ञानवर्धक अभिव्यक्ति के रूप में साहित्य कहलाता है। साहित्य का समाज दर्शन शूल - कांटों जैसी परम्पराओं और व्यवस्था के शोषण रूप का समर्थन करने वाले धार्मिक नैतिक मूल्यों के बहिष्कार से भरा पड़ा है। जीवन और साहित्य की प्रेरणाएँ समान होती हैं। समाज और साहित्य में अन्योन्याश्रित संबंध होता है। साहित्य की पारदर्शिता समाज के नवनिर्माण में सहायक होती है जो खामियाँ को उजागर करने के साथ उनका समाधान भी प्रस्तुत करती है। समाज के यथार्थवादी चित्रण समाज सुधार का चित्रण और समाज के नवनिर्माण का कार्य करता है।[2]

साहित्य समाज की उन्नति और विकास की आधार शिला रखता है इस संदर्भ में अमीर खुसरो से लेकर तुलसी, कबीर, जायसी, रहीम, प्रेमचंद, भारतेन्दु, निराला, नागार्जुन तक की शृंखला के रचनाकारों ने समाज के नवनिर्माण में अभूतपूर्व योगदान दिया है। व्यक्तिगत हानि उठाकर भी उन्होंने शासकीय मान्यताओं के खिलाफ जाकर समाज के निर्माण हेतु कदम उठाए। कभी - कभी लेखक समाज के शोषित वर्ग के इतना करीब होता है कि उसके कष्टों को वह स्वयं भी अनुभव करने लगता है। तुलसी, कबीर, रैदास आदि ने अपने व्यक्तिगत अनुभवों का समाजीकरण किया था जिससे आगे चलकर उन्होंने अविकसित वर्ग के प्रतिनिधि के रूप में समाज में स्थान पाया। मुंशी प्रेमचंद के एक कथन को यहाँ उद्धृत करना उचित प्रतीत होता है - 'जो दलित है, पीड़ित है, संव्रस्त है, उसकी साहित्य के माध्यम से हिमायत करना साहित्यकार का नैतिक दायित्व है।'

संस्कृत साहित्य हो या हिन्दी - साहित्य दोनों ही साहित्यों ने समाज जागरण के लिए अपनी पुरातन संस्कृति को निष्ठा के साथ स्मरण किया है, तो कभी तात्कालीन स्थितियों पर गहराई के साथ चिंता भी अभिव्यक्त की है। साहित्य मानव को श्रेष्ठ बनाने का संकल्प लेकर चला है। व्यापक मानवीय एवं राष्ट्रीय हित इसमें निहित है। हाल के दिनों में संचार साधनों के प्रसार और सोशल मीडिया के माध्यम से साहित्यिक अभिवृत्तियाँ समाज के नवनिर्माण में अपना योगदान अधिक सशक्तता से दे रही हैं। हालांकि बाजारवादी प्रवृत्तियों के कारण साहित्यिक मूल्यों में गिरावट आई है परन्तु अभी भी स्थिति नियंत्रण में है।

विचार-विमर्श

संस्कृत - साहित्य की यह एक अनोखी विशेषता है कि यह मानवता के कल्याण की भावना को अग्रसर करता है। वेद की शुरुआत ही

समस्त मानवों के कल्याण के संकल्प के साथ होती है, 'अग्निमीहे पुरोहितम्' इसका भावार्थ यह है कि समस्त मानवों का कल्याण करने वाले अग्नि की स्तुति करता हूँ। वैदिक ऋषि विश्व समाज कल्याण के लिए सुमति और सद्भावना की प्रार्थना करता है, "विदधातीति हितम्।"

हम पाते हैं कि साहित्य वह सषक्त माध्यम है, जो समाज को व्यापक रूप से प्रभावित करता है। यह समाज में प्रबोधन की प्रक्रिया का सूत्रपात करता है। यह समाज को प्रेरित करने का कार्य करता है और जहाँ एक ओर यह सत्य है सुखद परिणामों को रेखांकित करता है, वहीं असत्य का दुखद अंत कर सीख व शिक्षा प्रदान करता है। अच्छा साहित्य व्यक्ति और उसके चरित्र निर्माण में भी सहायक होता है। यही कारण है कि समाज के नवनिर्माण में साहित्य की केन्द्रीय भूमिका होती है। इससे समाज को दिशा बोध होता है और साथ ही उसका नवनिर्माण भी होता है। साहित्य समाज को संस्कारित करने के साथ साथ जीवन मूल्यों की भी शिक्षा देता है। इस प्रकार साहित्य अतीत से प्रेरणा लेता है, वर्तमान को चित्रित करने का कार्य करता है और भविष्य का मार्गदर्शन करता है। इसलिए साहित्य को समाज का दर्पण भी माना जाता है।[3]

परिणाम

ऋग्वेदकाल से लेकर आज तक संस्कृत भाषा के माध्यम से सभी प्रकार के वाङ्मय का निर्माण होता आ रहा है। हिमालय से लेकर कन्याकुमारी के छोर तक किसी न किसी रूप में संस्कृत का अध्ययन अध्यापन अब तक होता चल रहा है। भारतीय संस्कृति और विचार की धारा का माध्यम होकर भी यह भाषा अनेक दृष्टियों से धर्मनिरपेक्ष (सेक्यूलर) रही है। इस तरह भाषा में धार्मिक, साहित्यिक, आध्यात्मिक, दार्शनिक, वैज्ञानिक औजुझ

संस्कृत भाषा का साहित्य अनेक अमूल्य ग्रंथरत्नों का सागर है, इतना समृद्ध साहित्य किसी भी दूसरी प्राचीन भाषा का नहीं है और न ही किसी अन्य भाषा की परम्परा अविच्छिन्न प्रवाह के रूप में इतने दीर्घ काल तक रहने पाई है। अति प्राचीन होने पर भी इस भाषा की सृजन-शक्ति कुण्ठित नहीं हुई, इसका धातुपाठ नित्य नये शब्दों को गढ़ने में समर्थ रहा है।

संस्कृत साहित्य का महत्व

विश्वभर की समस्त प्राचीन भाषाओं में संस्कृत का सर्वप्रथम और उच्च स्थान है। विश्व-साहित्य की पहली पुस्तक ऋग्वेद इसी भाषा का देदीप्यमान रत्न है। भारतीय संस्कृति का रहस्य इसी भाषा में निहित है। संस्कृत का अध्ययन किये बिना भारतीय संस्कृति का पूर्ण ज्ञान कभी सम्भव नहीं है।

अनेक प्राचीन एवं अर्वाचीन भाषाओं की यह जननी है। आज भी भारत की समस्त भाषाएँ इसी वात्सल्यमयी जननी के स्तन्यामृत से पुष्टि पा रही हैं। पाश्चात्य विद्वान इसके अतिशय समृद्ध और विपुल साहित्य को देखकर आश्चर्य-चकित होते रहे हैं। भारतीय भाषाओं को जोड़ने वाली कड़ी यदि कोई भाषा है तो वह संस्कृत ही है।

विश्व की समस्त प्राचीन भाषाओं और उनके साहित्य (वाङ्मय) में संस्कृत का अपना विशिष्ट महत्व है। यह महत्व अनेक कारणों और

दृष्टियों से है। भारत के सांस्कृतिक, ऐतिहासिक, धार्मिक, आध्यात्मिक, दर्शनिक, सामाजिक और राजनीतिक जीवन एवं विकास के सोपानों की संपूर्ण व्याख्या संस्कृत वाङ्मय के माध्यम से आज उपलब्ध है। सहस्राब्दियों से इस भाषा और इसके वाङ्मय को भारत में सर्वाधिक प्रतिष्ठा प्राप्त रही है। भारत की यह सांस्कृतिक भाषा रही है।[4] सहस्राब्दियों तक समग्र भारत को सांस्कृतिक और भावात्मक एकता में आबद्ध रखने को इस भाषा ने महत्वपूर्ण कार्य किया है। इसी कारण भारतीय मनीषा ने इस भाषा को अमरभाषा या देववाणी के नाम से सम्मानित किया है।

ऋग्वेदसंहिता: सबसे पुराना ग्रंथ

ऋग्वेदसंहिता के कतिपय मंडलों की भाषा संस्कृतवाणी का सर्वप्राचीन उपलब्ध स्वरूप है। ऋग्वेदसंहिता इस भाषा का पुरातनतम ग्रंथ है। यहाँ यह भी स्मरण रखना चाहिए कि ऋग्वेदसंहिता केवल संस्कृतभाषा का प्राचीनतम ग्रंथ नहीं है - अपितु वह आर्य जाति की संपूर्ण ग्रंथराशि में भी प्राचीनतम ग्रंथ है। दूसरे शब्दों में, समस्त विश्ववाङ्मय का वह (ऋक्संहिता) सबसे पुरातन उपलब्ध ग्रंथ है। दस मंडलों के इस ग्रंथ का द्वितीय से सप्तम मंडल तक का अंश प्राचीनतम और प्रथम तथा दशम मंडल अपेक्षाकृत अर्वाचीन है। ऋग्वेदकाल से लेकर आज तक उस भाषा की अखंड और अविच्छिन्न परंपरा चली आ रही है। ऋक्संहिता केवल भारतीय वाङ्मय की ही अमूल्य निधि नहीं है - वह समग्र आर्यजाति की, समस्त विश्ववाङ्मय की सर्वाधिक महत्वपूर्ण विरासत है।

विश्व की प्राचीन प्रागैतिहासिक संस्कृतियों को जो अध्ययन हुआ है, उसमें कदाचित् आर्यजाति से संबद्ध अनुशीलन का विशिष्ट स्थान है। इस वैशिष्ट्य का कारण यही ऋग्वेदसंहिता है। आर्यजाति की आद्यतम निवासभूमि, उनकी संस्कृति, सभ्यता, सामाजिक जीवन आदि के विषय में अनुशीलन हुए हैं ऋक्संहिता उन सबका सर्वाधिक महत्वपूर्ण और प्रामाणिक स्रोत रहा है। पश्चिम के विद्वानों ने संस्कृत भाषा और ऋक्संहिता से परिचय पाने के कारण हो तुलनात्मक भाषाविज्ञान के अध्ययन को सही दिशा दी तथा आर्यभाषाओं के भाषाशास्त्रीय विवेचन में प्रौढ़ि एवं शास्त्रीयता का विकास हुआ। भारत के वैदिक ऋषियों और विद्वानों ने अपने वैदिक वाङ्मय को मौखिक और श्रुतिपरंपरा द्वारा प्राचीनतम रूप में अत्यंत सावधानी के साथ सुरक्षित और अधिकृत अनाए रखा। किसी प्रकार के ध्वनिपरक, मात्रापरक यहाँ तक कि स्वर (एकसेंट) परक परिवर्तन से पूर्णतः बचाते रहने का निःस्वार्थ भाव में वैदिक वेदपाठी सहस्राब्दियों तक अथक प्रयास करते रहे। "वेद" शब्द से मंत्रभाग (संहिताभाग) और "ब्राह्मण" का बोध माना जाता था। "ब्राह्मण" भाग के तीन अंश - (1) ब्राह्मण, (2) आरण्यक और (3) उपनिषद् कहे गए हैं। लिपिकला के विकास से पूर्व मौखिक परंपरा द्वारा वेदपाठियों ने इनका संरक्षण किया। बहुत सा वैदिक वाङ्मय धीरे-धीरे लुप्त हो गया है। पर आज भी जितना उपलब्ध है उसका महत्व असीम है। भारतीय दृष्टि से वेद को अपौरुषेय माना गया है। कहा जाता है, मंत्रद्रष्टा ऋषियों ने मंत्रों का साक्षात्कार किया। आधुनिक जगत् इसे स्वीकार नहीं करता। फिर भी यह माना जाता है कि वेदव्यास ने वैदिक मंत्रों का संकलन करते हुए संहिताओं के

रूप में उन्हें प्रतिष्ठित किया। अतः संपूर्ण भारतीय संस्कृति वेदव्यास की युग-युग तक ऋणी बनी रहेगी।

इसका रचनाकाल ईसा से 5500-5200 पूर्व माना जाता है। भारतीय विद्वानों ने वेदों के रचनाकाल का आरंभ ४५०० ई.पू. से माना है परन्तु यूरोपीय विद्वान इनकी रचना का काल ईसा से २०००-११०० पूर्व मानते हैं।

वेद, वेदांग, उपवेद

यहाँ साहित्य शब्द का प्रयोग "वाङ्मय" के लिए है। ऊपर वेद संहिताओं का उल्लेख हुआ है। वेद चार हैं- ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद। इनकी अनेक शाखाएँ थीं जिनमें बहुत सी लुप्त हो चुकी हैं और कुछ सुरक्षित बच गई हैं जिनके संहिताग्रंथ हमें आज उपलब्ध हैं। इन्हीं की शाखाओं से संबद्ध ब्राह्मण, अरण्यक और उपनिषद् नामक ग्रंथों का विशाल वाङ्मय प्राप्त है। वेदांगों में सर्वप्रमुख कल्पसूत्र हैं जिनके अवांतर वर्गों के रूप में और सूत्र, गृह्यसूत्र और धर्मसूत्र (शुल्बसूत्र भी है) का भी व्यापक साहित्य बचा हुआ है। इन्हीं की व्याख्या के रूप में समयानुसार धर्मसंहिताओं और स्मृतिग्रंथों का जो प्रचुर वाङ्मय बना, मनुस्मृति का उनमें प्रमुख स्थान है। वेदांगों में शिक्षा-प्रातिशाख्य, व्याकरण, निरुक्त, ज्योतिष, छंद शास्त्र से संबद्ध ग्रंथों का वैदिकोत्तर काल से निर्माण होता रहा है। अब तक इन सबका विशाल साहित्य उपलब्ध है। आज ज्योतिष की तीन शाखाएँ-गणित, सिद्धांत और फलित विकसित हो चुकी हैं और भारतीय गणितज्ञों की विश्व की बहुत सी मौलिक देन हैं। पाणिनि और उनसे पूर्वकालीन तथा परवर्ती वैयाकरणों द्वारा जाने कितने व्याकरणों की रचना हुई जिनमें पाणिनि का व्याकरण-संप्रदाय 2500 वर्षों से प्रतिष्ठित माना गया और आज विश्व भर में उसकी महिमा मान्य हो चुकी है। पाणिनीय व्याकरण को त्रिमुनि व्याकरण भी कहते हैं, क्योंकि पाणिनि, कात्यायन और पतंजलि इन तीन मुनियों के सत्प्रयास से यह व्याकरण पूर्णता को प्राप्त किया। यास्क का निरुक्त पाणिनि से पूर्वकाल का ग्रंथ है और उससे भी पहले निरुक्तविद्या के अनेक आचार्य प्रसिद्ध हो चुके थे। शिक्षाप्रातिशाख्य ग्रंथों में कदाचित् ध्वनिविज्ञान, शास्त्र आदि का जितना प्राचीन और वैज्ञानिक विवेचन भारत की संस्कृत भाषा में हुआ है- वह अतुलनीय और आश्चर्यकारी है। उपवेद के रूप में चिकित्साविज्ञान के रूप में आयुर्वेद विद्या का वैदिककाल से ही प्रचार था और उसके पंडिताग्रंथ[5] (चरकसंहिता, सुश्रुतसंहिता, भेडसंहिता आदि) प्राचीन भारतीय मनीषा के वैज्ञानिक अध्ययन की विस्मयकारी निधि है। इस विद्या के भी विशाल वाङ्मय का कालांतर में निर्माण हुआ। इसी प्रकार धनुर्वेद और राजनीति, गांधर्ववेद आदि को उपवेद कहा गया है तथा इनके विषय को लेकर ग्रंथ के रूप में अथवा प्रसंगतिर्गत सन्दर्भों में पर्याप्त विचार मिलता है।

दर्शनशास्त्र

वेद, वेदांग, उपवेद आदि के अतिरिक्त संस्कृत वाङ्मय में दर्शनशास्त्र का वाङ्मय भी अत्यंत विशाल है। पूर्वमीमांसा, उत्तर मीमांसा, सांख्य, योग, वैशेषिक और न्याय-इन छह प्रमुख आस्तिक दर्शनों के अतिरिक्त पचासों से अधिक आस्तिक-नास्तिक दर्शनों के नाम तथा उनके वाङ्मय उपलब्ध हैं जिनमें आत्मा, परमात्मा,

जीवन, जगत्पदार्थमीमांसा, तत्त्वमीमांसा आदि के सन्दर्भ में अत्यंत प्रौढ़ विचार हुआ है। आस्तिक षड्दर्शनों के प्रवर्तक आचार्यों के रूप में व्यास, जैमिनि, कपिल, पतंजलि, कणाद, गौतम आदि के नाम संस्कृत साहित्य में अमर हैं। अन्य आस्तिक दर्शनों में शैव, वैष्णव, तांत्रिक आदि सैकड़ों दर्शन आते हैं। आस्तिकेतर दर्शनों में बौद्धदर्शनों, जैनदर्शनों आदि के संस्कृत ग्रंथ बड़े ही प्रौढ़ और मौलिक हैं। इनमें गंभीर विवेचन हुआ है तथा उनकी विपुल ग्रंथराशि आज भी उपलब्ध है। चार्वाक, लोकायतिक, गार्हपत्य आदि नास्तिक दर्शनों का उल्लेख भी मिलता है। वेदप्रामाण्य को माननेवाले आस्तिक और तदितर नास्तिक के आचार्यों और मनीषियों ने अत्यंत प्रचुर मात्रा में दार्शनिक वाङ्मय का निर्माण किया है। दर्शन सूत्र के टीकाकार के रूप में परमादृत शंकराचार्य का नाम संस्कृत साहित्य में अमर है।

लौकिक साहित्य

कौटिल्य का अर्थशास्त्र, वात्स्यायन का कामसूत्र, भरत का नाट्यशास्त्र आदि संस्कृत के कुछ ऐसे अमूल्य ग्रंथरत्न हैं - जिनका समस्त संसार के प्राचीन वाङ्मय में स्थान है।

वैदिक वाङ्मय के अनंतर सांस्कृतिक दृष्टि से वाल्मीकि के रामायण और व्यास के महाभारत की भारत में सर्वोच्च प्रतिष्ठा मानी गई है। महाभारत का आज उपलब्ध स्वरूप एक लाख पद्यों का है। प्राचीन भारत की पौराणिक गाथाओं, समाजशास्त्रीय मान्यताओं, दार्शनिक आध्यात्मिक दृष्टियों, मिथकों, भारतीय ऐतिहासिक जीवनचित्रों आदि के साथ-साथ पौराणिक इतिहास, भूगोल और परंपरा का महाभारत महाकोश है। वाल्मीकि रामायण आद्य लौकिक महाकाव्य है। उसकी गणना आज भी विश्व के उच्चतम काव्यों में की जाती है। इनके अतिरिक्त अष्टादश पुराणों और उपपुराणादिकों का महाविशाल वाङ्मय है जिनमें पौराणिक या मिथकीय पद्धति से केवल आर्यों का ही नहीं, भारत की समस्त जनता और जातियों का सांस्कृतिक इतिहास अनुबद्ध है। इन पुराणकार मनीषियों ने भारत और भारत के बाहर से आयात सांस्कृतिक एवं आध्यात्मिक ऐक्य की प्रतिष्ठा का सहस्राब्दियों तक सफल प्रयास करते हुए भारतीय सांस्कृतिक को एकसूत्रता में आबद्ध किया है।

संस्कृत के लोकसाहित्य के आदिकवि वाल्मीकि के बाद गद्य-पद्य के लाखों श्रव्यकाव्यों और दृश्यकाव्यरूप नाटकों की रचना होती चली जिनमें अधिकांश लुप्त या नष्ट हो गए। पर जो स्वल्पांश आज उपलब्ध है, सारा विश्व उसका महत्त्व स्वीकार करता है। कवि कालिदास के अभिज्ञानशाकुन्तलम् नाटक को विश्व के सर्वश्रेष्ठ नाटकों में स्थान प्राप्त है। अश्वघोष, भास, भवभूति, बाणभट्ट, भारवि, माघ, श्रीहर्ष, शूद्रक, विशाखदत्त आदि कवि और नाटककारों को अपने अपने क्षेत्रों में अत्यंत उच्च स्थान प्राप्त है। सर्जनात्मक नाटकों के विचार से भी भारत का नाटक साहित्य अत्यंत संपन्न और महत्त्वशाली है। साहित्यशास्त्रीय समालोचन पद्धति के विचार से नाट्यशास्त्र और साहित्यशास्त्र के अत्यंत प्रौढ़, विवेचनपूर्ण और मौलिक प्रचुरसंख्यक कृतियों का संस्कृत में निर्माण हुआ है। सिद्धांत की दृष्टि से रसवाद और ध्वनिवाद के विचारों को मौलिक और अत्यंत व्यापक चिंतन माना जाता है। स्तोत्र, नीति और सुभाषित के भी अनेक उच्च कोटि के ग्रंथ हैं। इनके अतिरिक्त

शिल्प, कला, संगीत, नृत्य आदि उन सभी विषयों के प्रौढ़ ग्रंथ संस्कृत भाषा के माध्यम से निर्मित हुए हैं जिनका किसी भी प्रकार से आदिमध्यकालीन भारतीय जीवन में किसी पक्ष के साथ संबंध रहा है। ऐसा समझा जाता है कि द्यूतविद्या, चौरविद्या आदि जैसे विषयों पर ग्रंथ बनाना भी संस्कृत पंडितों ने नहीं छोड़ा था। एक बात और थी। भारतीय लोकजीवन में संस्कृत की ऐसी शास्त्रीय प्रतिष्ठा रही है कि ग्रंथों की मान्यता के लिए संस्कृत में रचना को आवश्यक माना जाता था। इसी कारण बौद्धों और जैनों, के दर्शन, धर्मसिद्धान्त, पुराणगाथा आदि नाना पक्षों के हजारों ग्रंथों को पालि या प्राकृत में ही नहीं संस्कृत में सप्रयास रचना हुई है। संस्कृत विद्या की न जाने कितनी महत्वपूर्ण शाखाओं का यहाँ उल्लेख भी अल्पस्थानता के कारण नहीं किया जा सकता है। परंतु निष्कर्ष रूप से पूर्ण विश्वास के साथ कहा जा सकता है कि भारत की प्राचीन संस्कृत भाषा-अत्यंत समर्थ, संपन्न और ऐतिहासिक महत्व की भाषा है। इस प्राचीन वाणी का वाङ्मय भी अत्यंत व्यापक, सर्वतोमुखी, मानवतावादी तथा परमसंपन्न रहा है। विश्व की भाषा और साहित्य में संस्कृत भाषा और साहित्य का स्थान अत्यंत महत्वशाली है। समस्त विश्व के प्रच्यविद्याप्रेमियों ने संस्कृत को जो प्रतिष्ठा और उच्चासन दिया है, उसके लिए भारत के संस्कृतप्रेमी सदा कृतज्ञ बने रहेंगे।

अति विस्तृत रचना-काल

संस्कृत साहित्य की रचना अति प्राचीन काल (हजारों वर्ष ईसापूर्व) से लेकर अब तक निरन्तर चली आ रही है।

अति-विस्तृत क्षेत्र

संस्कृत साहित्य की रचना भारत और भारत से बाहर के देशों में हुई है। जो पाण्डुलिपियाँ प्राप्त हुई हैं वे उत्तर-से दक्षिण और पूर्व-से-पश्चिम तक कई हजार किमी के विस्तृत क्षेत्र से हैं।

विशालता (abundance and vastness)

संस्कृत साहित्य इतना विशाल और विविधतापूर्ण है कि 'संस्कृत में क्या-क्या है?' - यह पूछने के बजाय प्रायः पूछा जाता है कि 'संस्कृते कि नास्ति?' (संस्कृत में क्या नहीं है?)। अनुमान है कि संस्कृत की पाण्डुलिपियों की कुल संख्या ३ करोड़ से भी अधिक होगी, यह संख्या ग्रीक और लैटिन पाण्डुलिपियों की सम्मिलित संख्या से सौ गुना से अधिक है।^[1] यह इतनी अधिक है कि बहुत सी पाण्डुलिपियाँ अभी तक सूचीबद्ध नहीं की सकी हैं, उन्हें पढ़ना और उनका अनुवाद आदि करना बहुत दूर की बात है।^[2]

विविधता (variety and diversity)

संस्कृत साहित्य की विविधता आश्चर्यचकित करने वाली है। इसमें धर्म और दर्शन, नाटक, कथा, काव्य आदि तो हैं ही, इसमें गणित, खगोलशास्त्र, आयुर्वेद, रसायन विज्ञान, रसशास्त्र, विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी, शिल्प, कृषि आदि में रचित ग्रन्थों की संख्या कई लाख है। इसी तरह व्याकरण, काव्यशास्त्र, भाषाविज्ञान, संगीत, कोश, कला, राजनीति, समाजशास्त्र, नीतिशास्त्र, कामशास्त्र, सुभाषित के भी असंख्य ग्रन्थ हैं।

सातत्य

प्राप्त पाण्डुलिपियों से स्वयं स्पष्ट है कि भारतीय महाखण्ड पर इतने सारे दैवी एवं मानवी आपदाओं (विदेशी आक्रमणों) के बावजूद हर कालखण्ड में संस्कृत साहित्य की रचना निर्बाध होती रही।

प्रगतिशीलता

संस्कृत साहित्य अत्यन्त प्रगत साहित्य है। उसमें सदा आगे बढ़ने और नयी उंचाइयाँ छूने की प्रवृत्ति है। उसमें सबसे प्राचीन व्याकरण ग्रन्थ है, सबसे प्राचीन शब्दकोश है, सबसे प्राचीन भाषावैज्ञानिक चिन्तन है। उसमें प्राचीनतम दर्शन है, तर्कशास्त्र है, गणित है, चिकित्साशास्त्र है, विधिशास्त्र है। उसमें नीति और धर्म का जो चिन्तन हुआ है वह उच्च कोटि का है। दर्शन को ही लें तो उसमें अनीश्वरवाद सहित विविध मतमतान्तरों का समावेश है। उसमें शास्त्रार्थ करने और ग्रन्थों के भाष्य लिखने तथा आवश्यक होने पर खण्डन तक करने की प्रवृत्ति पायी जाती है।

मौलिकता (originality)

किसी दूसरी भाषा से अनूदित संस्कृत के ग्रन्थों की संख्या नहीं के बराबर है। इसके विपरीत संस्कृत के ग्रन्थों का विश्व भर में आदर था/है जिसके कारण अनेकों संस्कृत ग्रन्थों का अरबी, फारसी, तिब्बती, चीनी आदि में अनुवाद हुआ। हाँ संस्कृत के किसी ग्रन्थ पर अन्य लोगों द्वारा संस्कृत में ही टीका ग्रन्थ (भाष्य) लिखने की परम्परा अवश्य रही है।

गम्भीरता (depth)

सभी विधाओं के ग्रन्थों में लिये गये विषय का चिन्तन अत्यन्त गहराई तक हुआ है, चाहे वह साहित्यशास्त्र हो, व्याकरण हो, आयुर्वेद हो या नीतिशास्त्र या कामशास्त्र।

उत्कृष्टता (excellence)

आज के युग के वैज्ञानिकों ने भी यह माना है कि नई पीढ़ी के कम्प्यूटर के लिये संस्कृत ही सर्वोत्तम भाषा है।

वैज्ञानिकता

संस्कृत साहित्य अधिकांशतः अधार्मिक (या सेक्युलर) प्रकृति का है जिसे आज के युग के हिसाब से भी वैज्ञानिक कहा जा सकता है। उसमें गणित है, खगोलविज्ञान है, आयुर्विज्ञान (मेडिसिन) है, भाषाविज्ञान है, तर्कशास्त्र है, दर्शनशास्त्र है, रसशास्त्र (रसायन) है। गणित में भी केवल अंकगणित ही नहीं है, ज्यामिति भी है, ठोस ज्यामिति भी, बीजगणित (अल्जेब्रा) भी, त्रिकोणमिति भी और कैलकुलस भी।

पन्थनिरपेक्षता

इतना प्राचीन होने के बावजूद संस्कृत साहित्य का अधिकांश भाग सेक्युलर तथा अधार्मिक (non-religious) है।^[1]

आधुनिक संस्कृत साहित्य

निष्कर्ष

भारतीय साहित्य और संस्कृति आचरणात्मक एवं आदर्शपूर्ण मानव मूल्यों के लिये एक अनुपम वैश्विक धरोहर हैं, जो शताब्दियों से अजश्र धारावत प्लावित सामाजिक जीवन में अपनी असीम गरिमा और अनन्त प्रासंगिकता को सिद्ध करते आ रहे हैं। भारतीय

धरातल पर प्रणीत वेद वाङ्मय ही धरती पर मानव मूल्यों की सुदृढ आधारशिला रख चुका है, जिसके आधार पर हमारी भव्य संस्कृति की अट्टालिका अपनी पूर्ण गरिमा के साथ खड़ी है। मानव को कदाचित जब अपनी अस्मिता का बोध हुआ होगा, तब ही से उसने मूल्यों की परिकल्पना और उनका आचरण आरंभ कर दिया होगा। चार वेद और एक सौ आठ उपनिषद मानव को अपने गंतव्य की ओर इस तत्परता के साथ अग्रसर होने की प्रेरणा देते हैं कि उससे कहीं भी कोई त्रुटि न हो जाय। कहना न होगा कि मानव के लिये आचरणात्मक और अनाचरणीय जैसे सभी तत्त्वों का वेद वाङ्मय ने विस्तार में वर्णन किया है, जिन्हें हम आज मूल्यों की संज्ञा से अभिहित कर रहे हैं।

मानव जीवन की उत्कृष्टता:- चैरासी लाख योनियों में मानव जन्म को वेद वाङ्मय ने अत्यंत उत्कृष्ट सिद्ध किया है। उपनिषद का स्पष्ट कथन है कि-

‘आहार निद्रा भय मैथुनादि
सामान्यमेतत् पशुभिः नराणां
ज्ञानम् नराणां अधिकम् विशेषः
ज्ञानेन शून्यः पशुभिः समानः’

उक्त कथन से ज्ञात होता है कि मानव जीवन में ज्ञान का कितना महत्व है। इसी ज्ञान का विकास मानव जीवन को सार्थक बनाने हेतु मूल्यों के रूप में होता है। अतः स्पष्ट है कि ‘ज्ञानाधारित आचरणात्मक तत्त्वों का समाहार स्वरूप ही मूल्य हैं। पूर्वोक्त उपनिषद वाक्य स्पष्ट करता है कि ज्ञान के अभाव में मानव पशु के समान हो जाता है। इसीलिये संप्रति हम ‘मानव मूल्य’ की बात ही करते हैं, क्योंकि हमें कहीं भी ‘पशु मूल्य’ जैसे पदबंध लक्षित नहीं होते हैं। मानव जीवन की उत्कृष्टता का वर्णन करते हुये शंकराचार्य अपने ग्रंथ

‘विवेक चूडामणि’ में कहते हैं कि-
‘दुर्लभम त्रयमेवै तद्दैवानुग्रह हेतुकम्
मनुष्यत्वम् मुमुक्षुत्वम् महापुरुष संश्रयः’

मूल्य की अमूल्य परिभाषा:- अर्वाचीन अर्थ-प्रधान युग में मूल्य शब्द का प्रयोग कई अर्थों में हो रहा है, यथा ‘दाम’, ‘कीमत’, ‘भाव’ इत्यादि, जो किसी वस्तु की लेन-देन में ही प्रयुक्त होते हैं, जिनका आचरणात्मक जीवन मूल्यों से कोई संबंध नहीं है। “मानव जीवन को उसके उद्गम से उत्स तक ले जाने वाले आचरणीय सूत्रों के समाहार स्वरूप को ही मानव-मूल्य” कहा गया है, जिनके अंतर्गत धर्माचरण, सत्य वचन, परोपकार, दानशीलता, निष्काम सेवा, त्याग, शान्ति, अहिंसा, सौहार्द भावना इत्यादि परिगणितहोते हैं। इन मानव-मूल्यों की उत्कृष्टता के वर्णनार्थ ही संपूर्ण वेद वाङ्मय का प्रणयन शताब्दियों पूर्व हुआ है। प्रातःकाल में नेत्रोन्मीलन से लेकर मानव द्वारा अनन्त निद्रा में प्रवेश करने तक की उसकी दीर्घ जीवन यात्रा में इन मानव मूल्यों को अपनाने की अनिवार्यता का वर्णन वेद वाङ्मय ने फलश्रुति सहित किया है। इनके अभाव में जीवन निस्सार मरुस्थल के समान रह जाता है। इन मानव मूल्यों के साँचे में ढालकर जीवन को सार्थक बनाना ही हमारे सनातन साहित्य का एक मात्र उत्स रहा है।

मानव मूल्य और प्रासंगिकता:- संप्रति युवा पीढ़ी की दिशाहीन जीवन शैली को देखकर उद्विग्न शिक्षाविद-समाज ने कदाचित वर्तमान के पाठ्यक्रमों में इन मानव मूल्यों को सम्मिलित करने का निर्णय लिया होगा, परन्तु शताब्दियों पूर्व ही हमारे क्रान्तद्रष्टा ऋषियों ने जीवन में इनकी अनिवार्यता एवं प्रासंगिकता के महत्व को पहचानकर इन्हें तत्कालीन गुरुकुल शिक्षा प्रणाली के पाठ्यक्रम में सम्मिलित ही नहीं किया, प्रत्युत इनके आचरण पर अत्यधिक बल भी दिया। संप्रति पश्चिमी सभ्यता की झंझा में दिशाहीन बहती जा रही युवा पीढ़ी के लिये इन मूल्यों का आचरण अनिवार्य है, क्योंकि आज की पीढ़ी उछंखलता को उन्नति और विज्ञान के विकृत उपयोग को विकास मानने की बड़ी भूल करती जा रही है। परिणामतः भारतीय प्रजा का एक सिंह-भाग इन मानव मूल्यों से अनभिज्ञ ही रह गया है, अतः संप्रति शिक्षा-प्रणाली के निर्माताओं का परम कर्तव्य यह है कि वे संस्कृत भाषा के अध्ययन को महाविद्यालय स्तर तक अनिवार्य बना दें।

प्राचीन वाङ्मय और मानव मूल्य:- संस्कृत में प्रणीत हमारा संपूर्ण वाङ्मय वेदों, उपनिषदों, रामायण, महाभारत, भागवत, भगवद्गीता आदि के रूप में विद्यमान है, जिसमें हमारे जीवन को सार्थक बनाने के सभी उपक्रमों का उल्लेख विस्तार से है। इन उपक्रमों के रूप में वर्णित ‘मानव मूल्यों’ का उल्लेख संक्षेप में अधोलिखित पंक्तियों में किया गया है, यथा-

परोपकार और निष्काम सेवा:- जीवन एवं शरीर की प्राप्ति मानव-सेवा के लिये हुआ है, न कि भोग हेतु। इस संदर्भ में प्रकृति ही हमारा प्रथम गुरु है, यथा-

‘परोपकाराय फलन्ति वृक्षः
परोपकाराय वहन्ति नद्यः
परोपकाराय दुहन्ति गावः
परोपकारार्थमिदम् शरीरम्।’

उक्त श्लोक से हमें अपने कर्तव्य का बोध स्वयमेव हो जाता है। हमारी संस्कृति में मानव सेवा को ही माधव सेवा मानने की विशिष्टता निहित है। महाभागवत में वर्णित एक आख्या से ज्ञात होता है कि महाराजा रन्तिदेव ने महाविष्णु के प्रकट होने पर उनसे मोक्ष न माँगकर जनता की सेवा करने की शक्ति प्रदान करने का वरदान माँगा, यथा-

‘सेवा धर्ममिदम् सर्वम् ब्रुच्यते शास्त्र सम्मतम्
रन्तिदेवो यथा सेवाम् अकरोत सर्वथा सदा।’

वाल्मीकि रामायण में भरत और लक्ष्मण का उदाहरण देते हुये कहा गया है कि-

‘सेवया मानवानाञ्च कृतज्ञो भरतो भवत्
माधवश्यैव सेवाच कृतज्ञो लक्ष्मणो भवत्।’

भाव यह है कि भ्राता की आज्ञा पर भरत ने पादुकाओं के माध्यम जनता की सेवा की और लक्ष्मण ने स्वयं माधव की सेवा की, इस प्रकार दोनों ने सेवा भावना की विशिष्टता का निरूपण किया।

धर्माचरण- ध्यातव्य है कि यहाँ प्रयुक्त ‘धर्म’ शब्द किसी मजहब के लिये न होकर मात्र ‘कर्तव्य पालन’ के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है।

महाभारत के वन पर्व में एक शूद्र धर्मव्याध का आख्यान उल्लिखित है, जो मांस विक्रय का पेशा करता था, परन्तु उसने ब्राह्मण कौशिक को उपदेश देकर यह सिद्ध किया कि 'संसार में स्वधर्माचरण से श्रेष्ठतम तथ्य अन्य कुछ नहीं है, जिसका आचरण ही मानव के लिये परमोत्कृष्ट धर्म है।'

'जन्म संस्कार मात्रेण धर्म मार्ग प्रवर्तकः

उपदेशम् कौशिकाय धर्मव्याधो भवत्तदा।'

श्रीमद्रामायण में माता कौशल्या श्रीरामचन्द्र से अपने धर्म का

आचरण करने का उपदेश देते हुये कहती है-

'यंपालयसि धर्मम् त्वम् धृत्याच नियमेनच

सवै राघव शार्दूला धर्मम्वामभिरक्षतु।'

भाव है कि 'हे राम! तुम जिस धर्म का आचरण करोगे, वही तुम्हारी रक्षा करेगा।' धर्माचरण को इस देश में अत्यंत प्रभावपूर्ण माना गया है। महाभारत के वन पर्व में यक्ष जब युधिष्ठिर से अनेक प्रश्न पूछकर संतुष्ट होता है, तो वह कहता है कि 'हे युधिष्ठिर! बुद्धिजीवियों ने स्पष्टतः कहा है कि इस संसार में स्वधर्माचरण से बढ़कर अन्य कोई तपस्या नहीं है, जिसका आचरणकर तुमने उसके महत्व को सिद्ध कर दिया है।', यथा-

'तपस्वधर्मं वर्तित्वम् इति प्रोक्तम् बुधैस्सदा
तस्मात्तदेव कर्तव्यम् यदा धर्मेण द्वापरे।'

श्रीमद्भगवद्गीता के तृतीय अध्याय 'कर्मयोग' के 35वें श्लोक में

भी इसी तथ्य की पुष्टि की गयी है, यथा-

'श्रेयान् स्वधर्मो विगुणः परधर्मात्स्वनुष्ठितात्
स्वधर्मे निधनम् श्रेयः परधर्मो भयावहः।'

त्याग भावना:- श्वास क्रिया की भाँति मानव के लिये त्याग भावना अत्यंत सहज होनी चाहिये, क्योंकि श्वास और आहार की भाँति सब कुछ स्वीकार करने के उपरान्त यदि शरीर उनका किसी न किसी रूप में परित्याग नहीं करता है, तो वह उस शरीर के लिये हानिकारक ही सिद्ध होगा। इसी प्रकार हम जो कुछ भी संचित करते हैं उनका त्याग भी अनिवार्य है। जब हम 'अपनी आवश्यकताओं की उपेक्षा कर किन्हीं जरूरतमन्दों का उपकार करते हैं, तो उसे ही त्याग भावना' कहा गया है। कठोपनिषद का स्पष्ट कथन है कि कर्म, संतान अथवा धन के माध्यम अमृतत्व की स्थिति को कदापि नहीं पाया जा सकता है. केवल त्याग के माध्यम ही इसे प्राप्त किया जा सकता है, यथा-

'न कर्मणा न प्रजया धनेन
त्यागेनैकेन अमृतत्व मानसुः।'

महाभारत में राजा शिबि का आख्यान वर्णित है, जिसने एक कपोत की रक्षा के लिये अपने शरीर को काटकर बाज को मांस दिया था।

'त्यागेनैकेन ख्यातोभूत शिभिस्सर्व महान् तथा
कपोत रक्षणार्थाय स्वशरीरमदात्तदा।'

महर्षि दधीचि और महारथी कर्ण त्याग भावना के संदर्भ में उल्लेखनीय गौरवशाली चरित्र हैं। महर्षि दधीचि ने वृत्तासुर के संहार के लिये अपनी रीड़ की हड्डी को दान में दे दिया, जिससे वज्रायुध

का निर्माण हुआ, तो दानी कर्ण ने अपने जन्मजात कवच और कुंडल को दान में देकर अपनी त्याग भावना का परिचय दिया।

वचन पालन वचन पालन को यदि भारतीय संस्कृति का प्राणतत्व कहा जाय तो कदाचित अतिशयोक्ति नहीं होगी, क्योंकि इस धरती पर सदियों से वचन पालन को जीवन से भी अत्यधिक महत्व दिया गया है, यथा-

'रघुकुल रीति सदा चलि आई

प्राण जाय पर वचन न जाई।'

इसी तथ्य को राजा हरिश्चन्द्र ने अपने जीवन में साकारकर 'सत्य हरिश्चन्द्र' बन गया 'हरिश्चन्द्रोपाख्यान' में स्पष्टतः कहा गया है-

'सत्य पालन धर्मेण हरिश्चन्द्रो भवत्तदा

राज्यम् सर्वम् परित्यक्त्वा श्मशानेच भवत्तदा।'

मत्स्य पुराण में राजा बलि का आख्यान विस्तार में वर्णित है जब राक्षस गुरु शुक्राचार्य को ज्ञात होता है कि राजा बलि ने वामन को तीन पग धरती दान देने का वचन दे चुका है, तो वह बलि को अपने वचन से मुकर जाने के कई तथ्य प्रस्तुत करता है, परन्तु बलि अपनी बात से टस से मस नहीं होता है। इसीलिये राजा बलि के बारे में कहा गया है-

'बली राजा भवत्तत्रा सर्वेभ्यो दानकर्मणा

त्यागी भूत्वातु लोकेच कीर्तिमान भवत्तदा।'

कविकुल गुरु कालिदास ने अपने महाकाव्य 'रघुवंशम्' के पंचम सर्ग में महाराज रघु की प्रशंसा में कहा कि रघु महाराजमहर्षि वरतन्तु के शिष्य कौत्स की इच्छापूर्ति के लिये चैदह करोड़ स्वर्ण मुद्रायें दान में देकर अपनी वचनबद्धता का निरूपण किया, यथा-

'रघुवंशे महाराजा विश्वजिदयाग तत्परः

धनम् ददौच कौत्साय रघुस्तत्र महानुभूत।'

विषय की विशदता एवं स्थानापन्नता को दृष्टि में रखते हुये प्रस्तुत आलेख में विषय पर विहंगम दृष्टिपात मात्र किया गया है। वेद वाङ्मय में प्रयुक्त आचरणीय जीवन मूल्यों का अन्तिम उत्स मानव को पूर्ण शान्ति प्रदान करना ही है, क्योंकि भारतीय जीवन-दर्शन संतुष्टि और मानसिक शान्ति में ही परमानन्द को निहित मानता आ रहा है। अतः कहना न होगा कि वेद वाङ्मय में वर्णित जीवन मूल्यों के आचरण के माध्यम इसी परमानन्द की स्थिति को प्राप्त करना ही हमारा गंतव्य रहा है। संप्रति अर्वाचीन जीवन में व्यक्ति समस्त संपदाओं और भोगों के होते हुये भी जिस शून्यता को महसूस कर रहा है, वह यदि उससे मुक्त होना चाह रहा है, तो उसके लिये इन उपरोक्त जीवन मूल्यों को पूर्ण निष्ठा के साथ अपनाने के अतिरिक्त कोई अन्य विकल्प नहीं है। वर्तमान युवा पीढ़ी भी जब तक विज्ञान के आकर्षक भ्रमजाल और तथाकथित पश्चिम की 'सभ्यता' से स्वयं को मुक्त नहीं कर पायेगा, तब तक उसके लिये शान्ति मृगतृष्णा ही रहेगी। इसी तथ्य को 'अमृत बिन्दोपनिषद' में इस प्रकार स्पष्ट किया गया है, यथा-

'मनयेव मनुष्याणाम् कारणम् बन्ध मोक्षयोः

बन्धाय विशयासक्तम् मुक्त्यै निर्विषयम् स्मृतम्।

मनस्सशान्तिरेवश्यात् मानवानाम् विशेषतः

शिवम् चैव शुभम् भूयात् लौकिके पारलौकिके।[5]

[3] कवठेकर, प्रभाकर नारायण, संस्कृत साहित्य में नीतिकथा का उद्भव एवं विकास, चैखम्बा, वाराणसी, 1981, पृ.- 202

संदर्भ

[1] मिश्र, जयशंकर, प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास, बिहार हिन्दी ग्रंथ अकादमी, पटना, 2006, पृ.- 5-6

[4] उपाध्याय, बलदेव, आधुनिक संस्कृत साहित्य का इतिहास, सप्तम खण्ड, चैखम्बा, वाराणसी 1976, पृ.- 613

[2] चैधरी, रामविलास, संस्कृत साहित्य का समालोचनात्मक इतिहास, मोतीलाल बनारसी दास, नई दिल्ली, 1991, पृ.- 167

[5] शुक्ल, हीरालाल, आधुनिक संस्कृत साहित्य का इतिहास, चैखम्बा, वाराणसी, 1978, पृ.- 70

